International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030; Impact Factor: RJIF 5.24
Received: 01-03-2019; Accepted: 06-04-2019
www.advancedjournal.com
Volume 4; Issue 3; May 2019; Page No. 27-29

नवगीत : मूल्य परिवर्तन की अवधारण व दिशाएँ

मनीष कुमार तिवारी[1], डॉ० उर्मिला वर्मा[2]

[1] शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

[2] प्राध्यापक हिन्दी विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश

किसी वस्तु में मूल्यों की अवधारणा का आधार उस वस्तु के प्रति लोकमत की रूचि तथा आकर्षण होता है। जब एक से अधिक व्यक्ति होते हैं और ऐसा होना सामाजिक जीवन का अनिवार्य लक्षण भी है। तब वहाँ पर अन्तर्क्रिया प्रारम्भ होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभवों के आधार में रूचिभेद से परिचित होता है। फलस्वरूप दूसरा व्यक्ति उसकी रूचियों का आदर करे इस भाव से प्रेरित होकर वह दूसरों की रूचियों एवं हितों का आदर तथा संरक्षण करेगा। पारस्परिक हित संरक्षण की यह अन्योन्याश्रितता, मूल्यों के प्रादुर्भाव और उनकी परम्परा तथा प्रगति का कारण बन जाती है। भारतीय समाजशास्त्री प्रो. राधाकमल मुखर्जी यह मानते हैं कि मूल्य, समाज द्वारा स्वीकृत इच्छाओं एवं लक्ष्यों का नाम है। समाज जिस वस्तु या विचार को उचित एवं युक्ति संगत समझता है वही 'मूल्य' बन जाता है। इस प्रकार सभी प्रकार के मानवीय सम्बन्धों में बाधक भाव को स्थापित करने वाला तत्व मूल्य माना जायेगा। विभिन्न संस्कृतियों की एकता एवं स्थायित्व में तथा संस्थाओं के ज्ञातव्य एवं उनकी एक रूपता के मूल में ही विद्यमान रहते हैं। मूल्य सामाजिक सम्बन्धों तथा व्यवहारों में प्रशासन की भूमिका का निर्वाह करते हैं।

मूल शब्द : नवगीत, मूल्य परिवर्तन, अवधारण, दिशा।

प्रस्तावना

'मूल्य' शब्द की प्रयोग–भूमि पर्याप्त विस्तृत और विकलाओं तक मानवीय ज्ञान एवं वाङ्मय की विस्तृत परम्परा में प्रायः सर्वत्र ही होता है। वाणिज्यिक अथवा आर्थिक प्रसंगों में इसका जो अभिप्राय है वह इस शब्द के अन्य प्रसंगों में मूल्य का अर्थ प्रतिमानों से है। अपने मूल स्वरूप में मूल्य एक धारणा है जिसका सम्बन्ध मानव और उसकी चेतना के साथ है। मूल्य वैचारिक परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म स्वरूप सम्पन्न एवं आत्मीयता से सम्बद्ध होते हैं। बौद्धिक रामात्मकता 'मूल्य' का प्राण तत्व होती है। दूसरे शब्दों में वैयक्तिक प्रतीति और संवेदना मूल्य का आधार फलक अथवा विकास भूमि होती है। मूल्य, संतोष, प्रसन्नता, सार्थकता और तृप्ति तथा प्रेरणा के संवाहक होते हैं। साथ ही मूल्य युग के मिजाज की नब्ज का स्पन्दन भी सूचित करते हैं। मूल्य विषयक विभिन्न विद्वानों की दृष्टियों और परिभाषाओं पर विचार करने के उपरान्त 'मूल्य' की सर्वाधिक समीचीन परिभाषा शशि सहगल की परिभाषा में दिखाई पड़ती है– "मूल्य एक वैचारिक इकाई है, जिसे आधार बनाकर व्यक्ति अपना जीवन जीता है और उसे आत्मोपलब्धि होती है।"[1]

काव्य या साहित्य के सन्दर्भ में मूल्य–विषयक कतिपय प्रमुख धारणाएँ एवं दृष्टियाँ इस प्रकार हैं –

(1) ''मानविकी के सन्दर्भ में मूल्य का अर्थ है जीवन दृष्टि या स्थापित वैचारिक इकाई, जिसे हम सक्रिय 'नार्म' भी कह सकते हैं।''[2]
(2) ''अनुभूति और जीने की अधिकार–बांछा को कलाकार (या साधारण जन) किसी भी कर्म–शृंखला के माध्यम से व्यक्त करने की चेष्टा करता है तो वहीं मानव मूल्यों की स्थापना करता है।''[3]
(3) ''मानव मूल्य हमेशा आदर्श होते हैं, यथार्थ में उन्हें कभी ग्रहण नहीं किया जाता।''[4]
(4) ''मूल्य आत्म प्रदर्शन है।''[5]
(5) ''बिना मानवीय संवेदनाओं को केन्द्र में रखे 'मूल्य' की कल्पना नहीं की जा सकती है।''[6]
(6) ''मूल्य का सम्बन्ध उपयोगिता से जुड़ा है। सामान्य व्यवहार में यह उपयोगिता वस्तु के आग्रह एवं चिन्तन की दिशा में वैचारिक अपनाव से सम्बन्धित है।''[7]
(7) "सार्थकता का पहलू सबसे बड़ा मानव मूल्य है।''[8]
(8) "अन्ततः मूल्य बोध का प्रश्न साहित्यकार की रचना प्रक्रिया का प्रश्न है। इस पर विचार वास्तव में इस रूप में होना चाहिए कि कला की रचना प्रक्रिया क्या है? और उनके भीतर मानव मूल्यों का कितना गठन और ठोस विस्तार समाहित है।''[9]

किसी भी वस्तु या विचार से प्राप्त होने वाला आनन्द अथवा तृप्ति ही मूल्य है। मूल्य एक अवधारणा है। मूल्य एक अनुभव है, जिसकी स्थूल सत्ता नहीं होती। उसका स्वरूप भावात्मक एवं विचारात्मक होता है न कि भौतिक। व्यक्ति जिस उद्देश्य के लिए जिन आकांक्षाओं के साथ जिस पद्धति से जीवन व्यतीत करता है, उन उद्देश्यों, आकांक्षाओं और पद्धतियों की समग्रता का नाम 'मूल्य' है जिसे जीवन–दृष्टि भी कहा जाता है। मूल्य असंदिग्ध रूप से जीवन–दृष्टि के प्रमुख विधायक की भूमिका का निर्वाह करते हैं। इसीलिए यह भी कहा जा सकता है कि मूल्य मानवीय आकांक्षाओं पर आधारित होते हैं।

शशि सहगल के मतानुसार, "किसी वस्तु में मूलयक्ता का आरोप करने के मुख्यतः दो अभिप्राय हो सकते हैं। पहला तो यह कि उस वस्तु का स्वतः सिद्ध मूल्य है और दूसरा यह कि वह किन्हीं निर्धारित मूल्यों की वृद्धि में सहायक है और तीसरा गौण अभिप्राय यह भी हो सकता है कि उसमें मूल्य निहित तो हैं, लेकिन वह किसी परिस्थिति विशेष में ही स्फुट होगा।''[10]

मूल्य परिवर्तन की दिशाएँ

"नये मूल्यों का उदय एक दो दिन में नहीं बल्कि इतिहास की एक लम्बी दूरी नापकर होता है। परिवर्तन की एक लम्बी प्रक्रिया से छनकर नए मूल्य अस्तित्व में आते हैं और परिवर्तन मूल्यों के संक्रमण से होता है तथा मूल्यगत संक्रमण का कारण दृष्टिकोण

के चुनाव की समस्या है।[11] वस्तुतः नवीन जीवन–मूल्यों के विकास में उनके दीर्घकालीन परिवर्तन एवं परिवर्द्धन का ही विशिष्ट योगदान है, मूल्यों की यह सतत् प्रवाहमयता की समाज का प्रगति का द्योतक है। "जीवन–मूल्य शाश्वत वस्तु नहीं है। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ युग–मानस के क्षितिजों में परिवर्तन घटित होता है और तब पूर्ववर्ती जीवन–मूल्यों का परीक्षण या पुनर्मूल्यांकन करके उनका संग्रह त्याग या नवीनीकरण किया जाता है और साथ ही नवीन जीवनानुभूतियों के सन्दर्भ में नवीन जीवन–मूल्यों की स्थापना भी की जाती है।"[12]

काव्य का मूलतः तीन तत्वों से मिलकर निर्मित होना स्वीकार किया गया। वे तत्व हैं – भाव–तत्व, कल्पना–तत्व एवं बुद्धि तत्व। कवि संवेदना का प्रस्फुटीकरण काव्य का मूल स्रोत है। इसके साथ ही साथ कलाकार अपने ज्ञान के विस्तार को अपनी रचना में वैचारिकता के धरातल पर एकत्रित करने का प्रयत्न करता है। वैचारिक पृष्ठिभूमि प्रत्येक रचनाकार की अपनी पृथक और भिन्न तरह की हो सकती हैं। इसी वैचारिक इकाई को काव्य में स्थापित कर कवि सामाजिक कल्याण और सामाजिक मान्यताओं के परिष्करण का पुण्य प्रयास करता है। सामीक्ष्य गीति–साहित्य अपने सामयिक परिवेश के तद्नुरूप प्रचलित एवं व्यवहृत उन समस्त जीवनानुभूतियों और जीवन दृष्टियों को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सर्वथा अग्रणी साहित्य दिखाई पड़ता है। शम्भुनाथ जी के जीवन का सबसे बड़ा दर्शन मानवतावादी दर्शन रहा है। वे सदैव मानव के सुख–दुःख में सहभागी बनकर मानव कल्याण के लिए समर्पित कलाकार रहे हैं। उनकी समूची रचनाधर्मिता इस तथ्य का स्वयं प्रमाण है।

"मूल्य सदैव विवशता के भीतर उपजता है, सम्बन्धों के सन्तुलन में उपजता है।"[13] विवशता से अभिप्राय मानव–मन की भाव–भूमि से है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति उपलब्ध मूल्यों के सहारे जीवन–यात्रा में अपने को विवश, असन्तुलित एवं अपर्याप्त पाथेय सम्पन्न अनुभव करता है अथवा नये मूल्यों को ग्रहण करने या उपलब्ध मूल्यों में परिवर्तन की आकांक्षा जन्य विवशता का अनुभव करने लगता है।

मूल्यों में परिवर्तन मानव की मूल्यान्वेषिका प्रवृत्ति के प्रतिफलन के रूप में भी होता है। मूल्यान्वेषण की प्रवृत्ति का विकास इस कारण होता है कि मनुष्य परिवर्तन धर्मी परिवेश के साथ सृजन करने का आकांक्षी होता है। सृजनेच्छा से भी मूल्य परिवर्तन की भूमिका का निर्माण होता है। सारे विश्व की वेदना को अपनी वेदना बना लेना सर्व साधारण का काम नहीं है। पर के दुःख में दुःखी होना मनुष्य का स्वाभाविक कार्य है किन्तु जब मनुष्य स्वार्थमय व्यवहारिक जगत् का जीव बन जाता है तब उसकी मानवता का प्रकृति रूप दब जाता है, उसकी प्राकृतिक बुद्धि कृत्रिमता के आवरण में ढक जाती है, मनुष्य आत्महित के समक्ष परार्थ को उपेक्षित कर देता है। उसमें केवल अपने सुख–दुःख को समझने की शक्ति और अपनी संकुचित सीमा की अनुभूति रह जाती है।

गीति रस में परिपक्व काव्य चेतना मूल्य विरहित नहीं हो सकती और यदि कहीं वह सुविचारित जीवन–दृष्टि और विवेक के साथ समन्वित हो तब ऐसा होना असम्भव ही है। डॉ. शम्भुनाथ सिंह की काव्य–धर्मिता, संवेदना और विवेक दोनों से कस–कर हाथ मिलाये हुए हैं। यही कारण है कि उनके गीतों में मूल्यों के टूटने पर रोष और पीड़ा है, बदलते जीवन मूल्यों के नये–नये तेवर भी हैं और जिन जीवन–मूल्यों में कवि की आसक्ति एवं प्रतिबद्ध आस्था है और उनकी स्थापना भी। उनके काव्य संसार में मूल्य बाहर से टँके हुए अलंकरण की तरह नहीं हैं अपितु उनकी भूमिका अन्तर्निहित सुभाष के सदृश है। डॉ. सिंह का अभ्यास मूल्य बोध को प्रचार का स्वरूप देना कभी भी और कहीं भी परिलक्षित नहीं होता। उनके गीतों में जीवन के लिए वांछनीय, वरेण्य एवं अपरिहार्य मूल्यों का अवमूल्यन क्रम पीड़ा के साथ–साथ रोष परक व्यंग्य की भी सृष्टि करता है।

डॉ. शम्भुनाथ सिंह के गीतों में जीवन की गति और जिन गीतों में जीवन की गति होती है, वे असंदिग्ध रूप से बदलते जीवन–मूल्यों के संवाहक भी होते हैं और इन बदलते मूल्यों में जो स्वस्थ होते हैं उनके समर्थक भी डॉ. सिंह का मूल्य बोध सांस्कृतिक एवं सामाजिक सन्दर्भों से तो गहराई के साथ जुड़ा हुआ है, वह राजनीति का भी स्पर्श करता है। डॉ. विजय शंकर मल्ल के शब्दों में, "प्रगतिवाद के जमाने में कवि शम्भुनाथ सिंह नवीन सामाजिक, राजनीतिक आकांक्षाओं से उद्वेलित हुए। मार्क्स के जीवन–दर्शन से प्रभावित हो, वे कुछ दिनों तक सक्रिय राजनीति में उतर पड़े। 'काशी प्रगतिशील लेखक संघ' के निर्माण और संचालन में उनका प्रमुख हाथ था। वेदिन उनके आवेगपूर्ण विचार मंथन के थे। सामाजिक विषमता और संघर्ष की वैचारिक और परिवेशगत प्रतीति ने उनके काव्य को सामूहिक भाव चेतना की ओर मोड़ा और उनके काव्य जीवन का दूसरा युग आरम्भ हुआ। वैयक्तिक संवेदनाओं के साथ ही उनकी रचनाओं में वर्गगत तनावों और असंतोष की भी अभिव्यक्ति होने लगी। इस दूसरे प्रकार की रचनाओं में कवि की समाज–चेतना एक नए भाव–स्तर पर प्रतिष्ठित हुई। 'मन्वन्तर' में (एक को छोड़कर) सभी इसी सम्पन्न चेतना को अभिव्यक्ति देने वाली रचनाएँ संकलित हैं।"[14]

'मन्वन्तर' डॉ. मल्ल की इस टिप्पणी को पूर्ण रूपेण प्रमाणित करने वाली रचना है, साथ–ही–साथ इस तथ्य की स्पष्ट घोषणा भी। डॉ. शम्भुनाथ सिंह 'आस्था' के जीवन को सर्वोपरि मूल्य स्वीकार करते हैं जिसके सहारे वे नयी आकांक्षाओं के स्वप्न देख सकने की नैतिक क्षमता सहज ही जुटा सकते हैं। वे निराशा जनक स्थितियों के बीच आशा और विश्वास के सहारे नवनिर्माण के गीत गाते हैं। वे मनुष्य को उसकी क्षमता की याद दिलाना भी नहीं भूलते और यह प्रकारान्तर से 'आस्था' ही की स्थापना है, विशेषकर उन प्रसंगों और क्षेत्रों में जहाँ वह जीवन के जर्जर आघातों से निष्प्राण और निष्प्रभ जैसी परिलक्षित होती है।

'आस्था', कर्म के साथ संपृक्त होकर सार्थक और फलवती होती है। कर्म का सम्पुट आस्था को अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचाता है जिसके अभाव में आस्था के भुलावे में बदल जाने की आशंका बराबर बनी रहती है। डॉ. शम्भुनाथ सिंह आस्था को कर्म के सम्पुट से दीक्षित कर उसे सार्थकता प्रदान करने में सफल रहे हैं। वे बीते हुए के लिए दुःखी तो हो सकते हैं। किन्तु असहाय और कातर शोक मग्नता के लिए अनेक काव्य–संसार में कोई स्थान नहीं है।

समसामयिक जीवन की विशृंखलता और विघटनधर्मिता डॉ. सिंह के लिए गहरी पीड़ा का विषय है और इसीलिए उनके गीतों में अभिव्यंजित होने का कारण भी। आज का जीवन निरन्तर कटाव का शिकार है। जिस तरह सरिता के किनारे निरन्तर क्षरण प्रक्रिया से क्षति ग्रस्त होते रहते हैं। ठीक उसी प्रकार आज की जिन्दगी अनवरत थपेड़ों के अप्रतिहत प्रहारों के कारण क्षरण का शिकार होती जा रही है। यह क्षरण विविध स्तरीय हैं जीवन का तारतम्य नष्ट हो जाने के लिए कटाव की स्थिति में है। मनुष्य के अन्तर्सम्बन्धों में स्वार्थ और आत्मलीनता के कारण कटाव है और इस तरह जिन्दगी और मनुष्य के आपसी सम्बन्ध भी इस कटाव के गहरे शिकार हैं। टुकड़ो–टुकड़ों में कटने और बटने के बाद जीवन और जीवन के अन्तर्सम्बन्धों का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। ऐसा जीवन एक अप्रिय रश्म अदायगी की विविध किस्तों का शिथिल भुगतान भर बन के रह जाते है।

'नवगीत' अभिव्यंजना के स्तर पर अपनी कट्टरता का प्रदर्शन नहीं करती। जीवन–शक्ति के रूप में जनता के बीच नवगीतों में सविश्वास का उपयोग होता है। नवगीत की छवियाँ उस समय उभर कर गीतों में सामने आती हैं जब गीत के मूल्य में कूटन

उपजी थी और जिसका उपजना लोक के लिए घातक था। यह अनुभव करने के लिए नवगीतकार के पास बहुत सारे ठोस कारण हैं। उनका मानना है कि ऐसा जीवन किस काम का जहाँ गति हो किन्तु उल्लास न हो, जहाँ क्रियात्मक घटना हो किन्तु कर्म न हो, जहाँ जीवन कबन्ध यात्रा जैसा प्रतीत होता है, वहाँ साहित्यिक मूल्यों में क्षरण हुआ है।

मनुष्य के अन्दर का पशु आज भी उतना ही बर्बर और उदण्ड है जितना वह युगों–युगों पूर्व था। कभी धर्म, कभी जाति, कभी भाषा, कोई न कोई जोड़ने वाली वस्तु इस आदिम पशु के लिए तोड़ने का तत्वावधान बन जाती है।

जिन्दगी चाहे कितनी भी विकसित क्यों न हो उसमें अतिशय भागदौड़ के लिए जिस प्रकार कोई स्थान नहीं हो सकता, उसी प्रकार पूर्णतः जड़त्व भी स्वीकार नहीं। सहज और सरल गति ही मानव–जीवन को विकास के पथ पर आगे ले जा सकती है। जड़िमामय जीवन परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया का अंगन रहकर चौखटे में जुड़ी हुई उस तस्वीर के सदृश्य दिखाई पड़ता है जो कि वर्षों से अपनी पुरानी भंगिमा को प्रदर्शित करती हुई प्रतीत होती है। ?

निष्कर्ष

नवगीत में मूल्य की अवधारणा का सम्बन्ध मानवीयता और मानवीय संवेदना से है। प्रत्येक नवगीतकार की दृष्टि में मूल्य की स्थिति उसके वैचारिक स्तर और उनकी आकांक्षाओं के प्रतिबिम्ब से जुड़े हुए होते हैं। उनका निर्माण सामाजिक एवं संवेदनात्मक प्रक्रिया द्वारा बनते हैं और वही कवि जीवन की भूमिका का निर्माता भी होता है। यहाँ यह कहना उचित होगा कि साहित्य सृजन में मानवीय आकांक्षाओं और उद्देश्यों की जहाँ उपलब्धि होती है, वहीं साहित्यिक मूल्य बनते हैं। युग–आकांक्षा के बदलते चिन्तन–धारा को हम साहित्यिक मूल्य कहते है।

नवगीत के पुरोधा डॉ. शम्भुनाथ सिह के ही नहीं, नवगीतकारों की रचनाओं के वे सभी मानदण्ड नवगीत में मूल्य और परिवर्तन की दिशाएँ निर्मित करते हैं। इन नवगीतकारों की संवेदनशीलता, भावुकता और कलाकार अन्तर्मन जहाँ समय के साथ–साथ चलने की संकल्पशीलता में बँधा हुआ है और परम्परा प्रेम के नाम किसी भी प्रकार की कूप मण्डूपता को स्वीकार करने के लिए राजी नहीं है। भारतीय जीवन दृष्टि की शाश्वत और निरन्तरता उनके गीति स्वरों में विश्वास बनकर व्यंजित होते है।

सन्दर्भ

1. शशि सहगल, नयी कविता में मूल्य बोध, पृष्ठ 15
2. आलोचन (पत्रिका), अक्टूबर, दिसम्बर, 67, पृष्ठ 64
3. श्री लक्ष्मी कांत वर्मा, 'लहर', सितम्बर, 60, पृष्ठ 44
4. वही, पृष्ठ 43
5. एच.ओ. ऐल्अर, ह्यूमन वेल्युस एण्ड वैराइटीज, पृष्ठ 20
6. डॉ. जगदीश गुप्त, लहर, सितम्बर, 60, पृष्ठ 47
7. श्री योगेन्द्र सिंह, माध्यम, जनवरी, 60, पृष्ठ 43
8. डॉ. धर्मवीर भारती, लहर, सितम्बर, 60, पृष्ठ 47
9. डॉ. रघुवंश, लहर, सितम्बर, 60, पृष्ठ 46
10. शशि सहगल, नयी कविता में मूल्य बोध, पृष्ठ 15
11. शशि सहगल, नयी कविता में मूल्य बोध, पृष्ठ 21
12. सं. करूणापति त्रिपाठी, डॉ. शम्भुनाथ सिंह : व्यक्ति और स्रष्टा, पृष्ठ 88
13. आलोचना, अक्टूबर–दिसम्बर, 67, पृष्ठ 61
14. सं. करूणापति त्रिपाठी, डॉ. शम्भुनाथ सिंह : व्यक्ति और स्रष्टा, पृष्ठ 27 (पुस्तक–समीक्षा खण्ड)